॥ ओ३म् खम्ब्रह्म ॥

साहित्य-प्रचारक का विशेषाङ्क

नारद-पुराण

का

आलोचनात्मक अध्ययन

डा० शिवपूजनसिंह कुशवाहा एम० ए० (संस्कृत)

साहित्यालंकार (देवघर), विशारद (प्रयाग),
वैदिक गवेषक संचालक, श्रीमद्दयानन्द
वैदिक शोध संस्थान, कानपुर

प्रकाशक—
जयदेव ब्रदर्स, बड़ोदा

आलोचना ... क अध्ययन

पाठ ... जैसा एक गोता लगाना और बहुमूल ... मो।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती

... न्द ... स्वती के सिद्धान्तानुसार आर्य ... प्र ... पादन करने वाले एवं आर्य सिद्ध ... में एक श्री शिवपूजनसिंह कुश ... हा 'पथिक' श्रेष्ठ ... र ... हैं, जो वैदिक साहित्य एवम् पुरात ... साहित्य की समीक्षा वैदिक विचारधारा के अनुकूल खूब ... करके प्रस्तुत करते हैं। उनकी नवीनतमकृति 'नारद-पुराण का आलोचनात्मक अध्ययन' एक प्रकार से गूढ़ मनन शील अध्ययन का प्रमाण है, और किस प्रकार तुलनात्मक ढंग से उनका अध्ययन सप्रमाण टीका टिप्पणियों सहित बड़ी मेहनत से तैयार किया है, यह पाठक इसके अध्ययन से ही समझ सकेंगे।

ऐसे चुने हुए विद्वान् लेखक को भी अपने विचारों का प्रचार करने के लिए आर्य जगत् के कर्णधारों से किसी भी प्रकार की सहायता नहीं प्राप्त हो रही, जिस के आधार पर वह इसी प्रकार का श्रेष्ठतम साहित्य आर्य जगत् को प्रदान कर सकें। उन्हें अपना दैनिक जीवन निर्वाह करते हुए इस ओर जितना चाहिए, उतना समय नहीं दे सकते, कारण कि आर्यसमाज के कर्णधार इस ओर से विमुख ही हैं। यदि कोई भी इनके जीवन निर्वाह का समुचित सम्माननीय प्रबन्ध कर सके, तो वैदिक साहित्य को उन्नत करने में यह अपना पुष्कल समय प्रदान कर सकें। परन्तु गुटबन्दी के राज्य में यह कैसे हो? फिर भी येन केन प्रकारेण वह अपने समय में से काफी समय देकर उच्चकोटि के वैदिक साहित्य निर्माण में प्रयत्नशील हैं। प्रभु उनको ऐसा अवसर प्रदान करे कि वह वैदिक साहित्य को उन्नत करने में अधिक योगदान दे सके। हमें प्रसन्नता है कि हम उनकी यह कृति जनता के समक्ष रख रहे हैं।

—शान्तिप्रिय

॥ ओ३म् ॥

स्वामी ... आनन्द दण्डी
2443
दयानन्द महिला महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र

नारद-पुराण

का

आलोचनात्मक अध्ययन

लेखक—
डा० शिवपूजनसिंह कुशवाहा एम० ए० (संस्कृत),
साहित्यालङ्कार (देवघर), विशारद (प्रयाग),
वैदिक गवेषक,
सञ्चालक—श्रीमद्दयानन्द वैदिक शोध-संस्थान, कानपुर

[सर्वाधिकार लेखक के अधीन]

प्रकाशक :
जयदेव ब्रदर्स, बड़ोदा

प्रथमावृत्ति
दयानन्दाब्द १४७
सृष्टि संवत् १,९७,२९,४९०७२
विक्रम संवत् २०२८
सन् १९७१ ई०

मूल्य १-०८

प्रकाशक—
शान्तिप्रिय पण्डित
जयदेव ब्रदर्स, बड़ोदा ।
आत्माराम मार्ग बडोदा-१

साहित्य-प्रचारक मासिक

२१ वर्षों से नियमित प्रकाशित होने वाले मासिक साहित्य-प्रचारक, **BOOK-SELLER, BARODA पुस्तक विक्रेता** बडोदा के ग्राहक बनें ।

वार्षिक मूल्य २) रु० भेजने वालों को **कुशवाहा का अद्-भुत जादू प्रतिष्ठान कानपुर** १०१ जादू के अद्भुत् खेल सीखने की फीस के साथ क्या-क्या सिखाया जाता है, दिया है, जिसका मूल्य २) है, वह मुफ्त मिलेगा, और वर्ष भर साथ मासिक भी ।

वार्षिक ग्राहक जनवरी से दिसम्बर तथा जून से मई तक प्राप्ति पर चाहे जब चन्दा भेजें, बनाये जाते हैं ।

पुस्तकालयों से ६० पैसे और विशेषांक का पूरा मूल्य लेकर भेजा जाता है ।

जयदेव ब्रदर्स, बड़ोदा-१

मुद्रक—
सुरेन्द्र कुमार कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस,
बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)

* ओ३म् खम्ब्रह्म *

नारद-पुराण

का

आलोचनात्मक अध्ययन

नारदपुराण : संक्षिप्त परिचय

'बृहन्नारदीय-पुराण' दो भागों में विभक्त है। वर्तमान में उपलब्ध बृहन्नारदीय-पुराण के प्रथमखण्ड में १२५ अध्याय हैं। द्वितीय जिसको उत्तर-खण्ड कहा जाता है, उसमें ८२ अध्याय हैं।

पंचविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ।।२३।।

[मत्स्यपुराण, अ० ३५]

मत्स्यपुराण के अनुसार इसकी श्लोक-संख्या २५ सहस्र है। प्रो० विल्सन के मतानुसार इसकी श्लोक संख्या ३००० है। पं० माधवाचार्य शास्त्री[1] २५ सहस्र; पं० कालूराम शास्त्री[2] २२ सहस्र; पं० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, व्याकरणाचार्य[3] २५ सहस्र; पं० बलदेव उपाध्याय एम० ए०, साहित्याचार्य[4] २५ सहस्र; पं०

---

१. 'पुराणदिग्दर्शन' पृष्ठ २५ [संवत् २००६ वि०, दिल्ली संस्करण]

२. 'पुराणकर्म' पूर्वार्द्ध, प्रथम संस्करण, पृष्ठ १२८।

३. 'पुराण तत्त्व मीमांसा' प्रथम संस्करण, पृष्ठ १७२।

४. 'पुराण-विमर्श' प्रथम संस्करण, पृष्ठ १५०।

ज्वालाप्रसाद मिश्र[1] २२ सहस्र श्लोक संख्या मानते हैं। मिश्रजी कहते हैं कि "इस पुराण का अधिकांश प्राचीन अंश ही विलुप्त हुआ है।"

'बृहन्नारदीय पुराण' नाम से भी एक वैष्णव ग्रन्थ मुद्रित हुआ है। वह महापुराण नहीं है, उपपुराण में गिना जा सकता है। 'लघु बृहन्नारदीय' नाम की भी छोटी-पोथी पाई जाती है, पर वह पुराण वा उपपुराण श्रेणी में नहीं गिनी जा सकती है।[2]

मेरी दृष्टि में सम्पूर्ण नारदीय पुराण बहुत अर्वाचीन काल का संग्रहीत तथा साम्प्रदायिक ग्रन्थ है। इसमें सभी सम्प्रदायों की दीक्षा आदि का वृत्तान्त है। बौद्धमत की निन्दा है, जिससे ज्ञात होता है कि इसकी रचना बौद्धमत के प्रचलन के बाद हुई है। वर्तमान पुराण में नारद प्रवक्ता नहीं हैं। यहां मुख्य प्रवक्ता सूत तथा गौण प्रवक्ता शौकनादि हैं। मत्स्यपुराण के अनुसार इसका प्रवक्ता नारद होना चाहिए।

पं० बलदेव उपाध्याय के मत में बौद्धों के प्रति आलोचना के कारण यह पुराण इस प्रकार भारवि (षष्ठ शती) तथा कुमारिल (सप्तमशती) से अवान्तरकालीन होना चाहिए। फलतः ७०० ई० से ९०० ई० के बीच में इसका रचनाकाल मानना सर्वथा उपयुक्त होगा।[3]

विल्सन साहब का कथन कुछ सत्य प्रतीत होता है। क्योंकि पच्चीस सहस्र श्लोकों का 'बृहन्नारदीय पुराण' उपलब्ध नहीं है।

---

१. 'अष्टादश पुराणदर्पण' पृष्ठ १९९। [सं० १९९३ वि० बम्बई संस्करण]।

२. 'अष्टादशपुराण-दर्पण' पृष्ठ २००-२०१।

३. 'पुराण-विमर्श' पृष्ठ ५५०।

"बृहन्नारदीय नामक भी एक पुराण ३८ अध्यायों में विभक्त लगभग ३६०० श्लोकों से सम्पन्न कलकत्ता से प्रकाशित है। (एशियाटिक सोसाइटी)।"[1]

प्रस्तुत आलोच्य पुराण

मेरे सामने जो 'नारद पुराण' है, वह २८ मार्च सन् १९४० ई० में सनातनधर्म प्रेस, मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश) द्वारा मुद्रित व प्रकाशित है। इसके मुख पृष्ठ पर "महर्षि-कृष्णद्वैपायन वेदव्यासरचित" 'नारद पुराण'। श्लोक और हिन्दी भाषा टीका सहित। अनुवादक—ऋ० कु० रामचन्द्र शर्मा सम्पादक—"सनातनधर्म पताका" मुरादाबाद अङ्कित है। इसके अन्त में ऋषि कुमार पं० रामचन्द्र शर्मा लिखते हैं—"भगवान् की कृपा से यह नारद पुराण की भाषा पूर्ण हो गई। इस नारद पुराण का मूल बङ्गाल, गुजरात और लखनऊ से प्राप्त हुई पुस्तकों के आधार पर दिया गया है।"

इस मुरादाबादी संस्करण में ४२ अध्याय और ३६१२ श्लोक संख्या है। शेष श्लोक पौराणिकों के घर में होंगे। जैसा कि तालिका से ज्ञात होता है—

अध्याय	श्लोक संख्या	अध्याय	श्लोक संख्या
१	७९	७	७६
२	५७	८	१३७
३	८३	९	१४८
४	९९	१०	५२
५	८३	११	१९७
६	७०	१२	९५

१. 'पुराण-विमर्श' पृष्ठ ५४८।

१३	१५३	२८	९०
१४	९४	२९	६३
१५	१६९	३०	११४
१६	११६	३१	७१
१७	११३	३२	५१
१८	३२	३३	१६२
१९	४७	३४	७७
२०	८६	३५	७३
२१	२८	३६	६१
२२	२८	३७	६९
२३	९९	३८	५९
२४	३५	३९	७१
२५	६५	४०	५९
२६	४६	४१	११८
२७	१०६	४२	८१

कुल योग ३६१२

नारदपुराण में अनृतदोष

१—मृकण्डु मुनि की दश सहस्र युगों तक तपस्या—

युगानामयुतं ब्रह्मन्गृणन्ब्रह्म सनातनम् ।
निराहारः क्षमायुक्तः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः ॥५१॥

[ना० पु०, अध्याय ४]

अर्थ—हे ब्रह्मन् ! उन्होंने दश हजार युगों तक निराहार रह, क्षमा धारण कर, सत्यप्रतिज्ञ रह, इन्द्रियों को वश में रख कर सनातन ब्रह्म (भगवान् विष्णु) का कीर्तन किया था।

समीक्षा—दश हजार युगों तक निराहार कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता है। उपनिषदोंमें कहा है कि "अन्नं वै ब्रह्म"। अतः अन्न से ही प्राणी जीवित रह सकता है। इसलिए अन्य पुराणों के समान नारद पुराण के कर्त्ता ने भी यह गप्प मारा है।

२—तुलसी की माला धारण करना—

तुलसीकाननं दृष्ट्वा ये नमस्कुर्वते नराः।
तत्काष्ठाङ्कितकण्ठा ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥६५॥
तुलसीगन्धमाघ्राय सन्तोषं कुर्वते तु ये।
तन्मूलमृत्तिकां ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥६६॥

[ना० पु०, अध्याय ५]

अर्थ—जो तुलसी के वन को देखकर प्रणाम करते हैं, तुलसी की माला कण्ठ में धारण करते हैं, उनको विष्णुभक्त समझो ॥६५॥

जो तुलसी की गन्ध को और तुलसी की जड़ की मृत्तिका की गन्ध को सूंघ कर सन्तुष्ट होते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं ॥६६॥

समीक्षा—क्या जो तुलसी की माला कण्ठ में नहीं धारण करते हैं, और तुलसी वन को प्रणाम नहीं करते हैं, वे भगवद्भक्त नहीं हैं? यह तो वैष्णव मत की लीला है। यह श्लोक साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से लिखा गया प्रतीत होता है। तुलसी की माला धारण करने की वेदादि सच्छास्त्रों में कोई चर्चा नहीं है।

'शिव पुराण' में कहा है कि जो रुद्राक्ष धारण नहीं करता है, वह चाण्डाल के तुल्य त्याज्य है।

'पृथिवी चन्द्रोदय' में वैष्णवों के लिए कहा है कि जो मनुष्य तप्त शङ्खादिकों के चिह्न को धारण करता है, वह कोटि जन्मपर्यन्त चाण्डाल होता है।

अतः तुलसी की महिमा वैष्णव सम्प्रदाय की लीला है।

३—रुद्राक्ष धारण करने वाला श्रेष्ठ भगवद्भक्त—

रुद्राक्षालंकृता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥६६॥

[ना० पु० अ० ५]

अर्थ—जो रुद्राक्ष धारण करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं।

समीक्षा—यही पुराण एक स्थल में तुलसी की माला धारण करने वाले को श्रेष्ठ भगवद्भक्त कहता है, तो दूसरे स्थल में रुद्राक्ष धारण करने वाले को श्रेष्ठ भगवद्भक्त कहता है। यह तो परस्पर विरोधी बातें है। यहां 'वदतो व्याघात दोष' है।

४—गङ्गा-गङ्गा कहने से पापों की मुक्ति—

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शते स्थितः।
सोऽपि मुच्येत पापेभ्यः किमु गङ्गाभिषेकवान् ॥१२॥

[ना० पु० अ० ६][1]

अर्थ—जो चार सौ कोस पर बैठा हुआ भी गङ्गा गङ्गा कहता है, वह भी पापों से मुक्त हो जाता है। फिर जिस पर गङ्गाभिषेक हो उसका तो क्या ही कहना ? ॥

समीक्षा—क्या शक्कर-शक्कर कहने से मुंह मीठा हो सकता है ? कदापि नहीं। फिर चार सौ कोस पर बैठा हुआ गङ्गा-गङ्गा कहने से पापों से कैसे मुक्त हो सकता है ? गङ्गा भक्तों ने पाप से मुक्ति के लिए यह सस्ता मार्ग बतलाया है। इससे तो पापियों ही की वृद्धि होगी। लोग अन्धाधुन्ध पाप करेंगे, क्योंकि गङ्गा का नाम लेने से तो मुक्त हो ही जायेंगे। यह गप्प है।

---

१. इसी प्रकार अध्याय ६ श्लोक १४८ में एक बार गङ्गा गङ्गा मुख से निकालने पर पाप से मुक्ति लिखी है। —लेखक

यदि इसे पौराणिक सही मानते हैं, तो जप तप ईश्वराराधन क्यों करते हैं ? मुसलमान, ईसाई आदि विधर्मियों से गङ्गा-गङ्गा कहलवा कर शुद्ध करके रोटी-बेटी करने में क्यों हिचकते हैं ? शुद्धि का विरोध क्यों करते हैं ? श्री दीनानाथ शास्त्री, श्री माधवाचार्य शास्त्री प्रभृति जो आर्यसमाज के शुद्धि प्रोग्राम का विरोध करते हैं, वह व्यर्थ ही है ।

५—अविमुक्तक्षेत्र (काशी) के स्मरण से पाप-मुक्ति—

योजनानां शतस्थोऽपि अविमुक्तं स्मरेद्यदि ।
बहुपातकपूर्णोऽपि पदं गच्छत्यनामयम् ॥३७॥

[ना० पु० अ० ६]

अर्थ—जो चार सौ कोस पर बैठा हुआ भी अविमुक्त क्षेत्र (काशी) का स्मरण करता है, वह अनेक पापों से पूर्ण होने पर भी (इस समय काशी में चित्तवृत्ति लगने के कारण उन पापों के पञ्जे से छूट) अनामय पद को प्राप्त होता है ॥

समीक्षा—चार सौ कोस पर बैठे काशी के स्मरण से पाप से मुक्ति का होना असम्भव है । यह वेदादि सच्छास्त्रों के सर्वथा विरुद्ध है । काशी नगरी में पर्याप्त चोर, बदमाश, धूर्त पापी हैं । पुराणकार ने काशी की महिमा प्रदर्शित करने के लिए यह गप्प मारी है ।

६—विष्णु के चरण से गङ्गा की उत्पत्ति—

विष्णुपादाग्रसंभूता या गङ्गेत्यभिधीयते ॥१॥

[ना० पु० अध्याय ६]

अर्थ—गङ्गाजी की उत्पत्ति विष्णु के चरणों के अग्रभाग से कही जाती है ।

समीक्षा—विष्णु के चरणों के अग्र भाग से गङ्गा की उत्पत्ति भौगोलिक दृष्टिकोण से अशुद्ध है। गङ्गा हिमालय पहाड़ के गङ्गोत्री से निकलती है, यह विश्वविदित है।

'विष्णु' तो परमात्मा का नाम है, जो निराकार है। उसके चरणों की कल्पना व्यर्थ ही है।

"विष्लृ व्याप्तौ" इस धातु से 'नु' प्रत्यय होकर 'विष्णु' शब्द सिद्ध हुआ है। "वेवेष्टि व्याप्नोति चराऽचरं जगत् स विष्णुः" चर और अचर रूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम 'विष्णु' है।[1]

७—प्रेतपिशाच की चर्चा—

प्रेताः पिशाचाः कूष्माण्डग्रहा बालग्रहास्तथा।
डाकिन्यो राक्षसाश्चैव न बाधन्तेऽच्युतार्चकम् ॥८॥
[ना० पु० अ०, ११]

अर्थ—विष्णुपूजक को प्रेत, पिशाच, कूष्माण्डग्रहकुत्सित गैस वाले ग्रह, बालग्रह, डाकिनी और राक्षस बाधा नहीं दे सकते॥

समीक्षा—पुराणकार ने यहां प्रेत, पिशाच, ग्रह, डाकिनी, राक्षस आदि की व्यर्थ ही कल्पना की है।

'प्रेत' का अर्थ लाश, और 'पिशाच' का अर्थ 'कच्चा मांस खाने वाला कीटाणु=जीवाणु को कहते हैं। ग्रहों का प्रकोप भी कल्पनामात्र ही है। जड़ पदार्थ किसी व्यक्ति विशेष पर अपनी कृपा या कुदृष्टि प्रगट नहीं कर सकते।

---

१. 'सत्यार्थ-प्रकाश' प्रथम समुल्लास।

भूत-प्रेतात्मा (Ghost, spirit, evil)—

लोगों का विश्वास है कि भूत-प्रेत कोई निष्कृट योनि विशेष है, जो मनुष्यों को सताया करती हैं। पिशाच, जिन, चुड़ैल आदि भी इसी प्रकार की योनियों में माने जाते हैं। पौराणिक विचारधारा के शिक्षित व्यक्ति भी इन बातों पर विश्वास करते हैं। पं० अखिलानन्द शर्मा अपने "अथर्ववेदालोचन" में; पं० माधवाचार्य शास्त्री अपने "पुराण-दिग्दर्शन" में; और पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र विद्यावारिधि अपने "दयानन्दतिमिरभास्कर" ग्रन्थ में वेदादि शास्त्रों के प्रमाणों से भूत-प्रेतों की सत्ता स्वीकार करते हैं।

भूत-प्रेत वास्तव में कोई वस्तु नहीं। यह केवल लोगों का भ्रम है। 'भूत' का अर्थ तो 'बीता हुआ' होता है। व्याकरण शास्त्र में 'भूत' 'एक काल' होता है। वेदादि सच्छास्त्रों में 'भूत' 'प्राणी' के अर्थ में आया है। 'प्रेत' का अर्थ मनुजी महाराज ने शव किया है।[1]

'भूत' शब्द "भू सत्तायाम्" धातु से निष्पन्न होकर आर्ष ग्रन्थों में अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ देखा जाता है। भूत=अतीत को छोड़कर अन्य कई अर्थों में यह शब्द वैदिक तथा अवैदिक दोनों प्रकार के संस्कृत साहित्य में विद्यमान है। इस शब्द के अर्थ में प्रत्येक प्रकार का प्राकृतिक संघात, एक अणुक, द्वयणुक, त्र्यणुक आदि से लेकर लोकलोकान्तर तक सम्मिलित है। इसके अर्थ में समस्त सूक्ष्म भौतिक जगत् अर्थात् तन्मात्रा रूप जगत् उसी प्रकार सम्मिलित है, जिस प्रकार पृथिव्यादि महाभूत वा पंच तत्त्व। यह प्राणधारी जीवों के लिए भी प्रयुक्त हुआ पाया जाता है, और अप्राणी सामूहिक जगत् के लिए भी। कभी यह अचर जगत् का अर्थ देता है, कभी-कभी यह छोटे कीटाणुओं के अर्थ में भी आता है।

---

१. 'मनुस्मृति' अ० ५।६५ ॥

आजकल जो पौराणिक जगत् में भूत-प्रेत प्रकट, अप्रकट दोनों बतलाए जाते हैं, वह साधारण भांति में अप्रकट, परन्तु एकान्तचारी व्यक्ति को वह प्रकट भी हो जाते हैं। जब प्रकट होते हैं, तब उसके विशेष चिह्न ये बतलाए जाते हैं कि पैर उसके पीछे की ओर मुड़े रहते हैं। अर्थात् जिस प्रकार जीवित मनुष्य की एड़ी और अंगुलिएं आगे को होती हैं, उस भूत की एड़ी और अंगुलियों के पंजे पीठ की ओर होते हैं। यह भी सुना जाता है कि वह अनेक रूप धारण कर लेता है। कभी कुत्ता, भेड़िया, भैंसा प्रभृति पशु रूप में दिखाई पड़ता है। कभी बड़ा डीलडौल का ताल वृक्ष के समान हो जाता है। लोगों का विश्वास है कि यह अदृश्य रूप में पुरुष, स्त्री, बच्चों के शरीर में प्रवेश कर जाता है, और कष्ट देता है। इसी को भूत लगना कहते हैं।

सुप्रसिद्ध सुधारक क्रान्तदर्शी महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी ने इस विचारधारा का खण्डन किया। आप अपनी प्रसिद्ध क्रान्तिकारी पुस्तक "सत्यार्थ-प्रकाश" के द्वितीय समुल्लास में लिखते हैं— "और जब इस शरीर का दाह हो चुका, तब उसका नाम भूत होता है। अर्थात् अमुक नामी पुरुष था। जितने उत्पन्न हो वर्तमान हो के न रहें वे भूतस्थ होने से उनका नाम भूत है। ऐसा ब्रह्मा से लेकर आज पर्यन्त के विद्वानों का सिद्धान्त है। परन्तु जिसको शङ्का, कुसङ्ग, कुसंस्कार होता है उसको भय और शङ्का रूप भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि अनेक भ्रमजाल दुःखदायक होते हैं। देखो जब कोई प्राणी मरता है, तब उसका जीव पाप-पुण्य के वश होकर परमेश्वर की व्यवस्था से सुख-दुःख के फल भोगने के अर्थ जन्मान्तर धारण करता है क्या इस अविनाशी परमेश्वर की व्यवस्था का कोई भी नाश कर सकता है? अज्ञानी लोग वैद्यक शास्त्र वा पदार्थ विद्या के पढ़ने, सुनने और विचार से रहित होकर सन्निपात ज्वरादि शारीरिक और उन्मादकादि मानस रोगों का नाम भूत-प्रेत आदि धरते हैं। उनका औषध सेवन और

पथ्यादि उचित व्यवहार न करके उन धूर्त्त, पाखण्डी, महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी, भङ्गी, चमार, शूद्र, म्लेच्छादि पर भी विश्वासी होकर अनेक प्रकार के ढोंग, छल, कपट और उच्छिष्ट भोजन द्वारा धागा आदि, मिथ्या मन्त्र, यन्त्र, बांधते बंधवाते हैं। अपने धन का नाश, सन्तान आदि की दुर्दशा और रोगों को बढ़ा कर दुःख देते फिरते हैं।"

महर्षि दयानन्दजी का सिद्धान्त वास्तव में वैदिक व वैज्ञानिक है। पं० तुलसीराम स्वामी[1], पं० वाचस्पतिजी एम० ए०, बी० एस-सी०, विद्यावाचस्पति[2] भी महर्षि के सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ लिखते हैं— "भगं अस्या वर्चः" (अ० का० १, सू० १४) इस सूक्त को कौशिक ने स्त्री और पुरुष के दौर्भाग्य करने के लिए उनकी भोगी हुई दातून, गेन्द, माला, केश आदि को गाड़ते हुए पढ़ने का विनियोग लिखा है। यहां कौशिक का भूत आचार्य सायण पर बड़ी प्रबलता से चढ़ गया है। खेंचतान कर सूक्त के चारों मन्त्रों का अर्थ उधर ही लगाया है। पं० ग्रिफिथ और ह्विटनी भी उधर ही बह गये हैं। इस अवसर पर हमें हर्ष से कहना पड़ता है कि पं० वेबर, लडविग और जिम्मर आदि महोदयों ने स्वतन्त्र होकर इस सूक्त को विवाहपरक लगाया है। इस सूक्त की वास्तविक शोभा भी विवाहपरक अर्थों में ही है। जो प्रस्तुत पुस्तक में देखने से विदित होगी। वेद जैसे पवित्र धर्म ग्रन्थ में स्त्री के दौर्भाग्य करने की घृणित शिक्षा ही नहीं हो सकती।

"ये अमावास्यां रात्रिम्" (अथर्व०का० १ सूक्त १६) को कौशिक ने शत्रुओं को मारने के लिए सीसे के चूर्ण से मिला अन्न खिला देने के

---

१. 'भास्कर-प्रकाश' चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ २२-२३।

२. 'सत्यार्थ-प्रकाशभाष्य' द्वितीय समुल्लास, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ११४ से १३६ तक।

लिए विनियुक्त किया है। इस सूक्त में भी पिशाचों के सन्तानों और अत्रि यातु आदि नामों से सायण ने रक्षः, पिशाच आदि लिए हैं। पं० ग्रिफिथ ने भी पिशाच शब्द से भूत-प्रेत ले लिए हैं। सीस शब्द से पं० ह्विटनी महोदय ने सीसे का ताबीज लिया है। पं० ग्रिफिथ ने सीस शब्द से सीसे का टुकड़ा ले लिया है, और मन्त्र के अर्थ कर दिए हैं। यह बतलाने का यत्न नहीं किया कि अग्नि, वरुण, इन्द्र आदि देवों का सीसे से क्या सम्बन्ध है। वह सीसा जत्थे-जत्थे बना कर आक्रमण करने वाले यातुधानों को कैसे बेधेगा ? कौशिक ने तीन उपाय शत्रु के नाश के बतलाए हैं। एक तो शत्रुओं को बांधकर सीसे का चूर्ण उनको खिला कर मारे, दूसरे उनको लोहे की बेड़ियाँ पहना दे, तीसरे बांस की छड़ी बेंत से ठोके। परन्तु उन तीनों कार्यों का मन्त्रगत वाक्यों से सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। वस्तुतः देखा जाय तो सीसे की गोलियां बनाकर बारूद देकर अग्नि के बल से दुष्ट शत्रुओं का मुकाबला करने का वेद ने उपदेश किया है।"

[अथर्ववेदभाषाभाष्य, द्वितीयावृत्ति, भूमिका, पृष्ठ २०-२१]

प्रोफेसर मैक्डानल, श्री विन्टरनीज, श्री जे० एन० फरकुहर, श्री मूर प्रभृति पाश्चात्य विद्वान् और सायण, श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, श्री राजाराम शास्त्री, श्री देवराज, श्री सम्पूर्णानन्दजी, श्री प्रोफेसर बलदेव उपाध्याय एम० ए० साहित्याचार्य, श्री गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा, श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार, श्री सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव, श्री मिश्रबन्धु प्रभृति भारतीय विद्वान् अथर्ववेद में मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, इन्द्रजाल, जादू-टोना प्रभृति मानते हैं। पर अथर्ववेद में इन सब बातों की कोई चर्चा नहीं है, जैसा कि पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी तथा पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार के भाष्य से स्पष्ट प्रकट होता है। पं० प्रियरत्नजी आर्ष (स्वामी ब्रह्म मुनिजी) ने अपनी पुस्तक "अथर्ववेदीय मंत्रविद्या" और "अथर्ववेदीय चिकित्सा-

पद्धति" में इस पर पूर्ण रूप से विचार किया है। मैंने अपनी पुस्तक "अथर्ववेदकी प्राचीनता" में इनके मतों की समुचित आलोचना करते हुए प्रदर्शित किया है कि अथर्ववेद में जादू-टोना नहीं, वरन् वैज्ञानिक प्रयोग हैं। राक्षस, अप्सरा, गन्धर्व, पिशाच प्रभृति कृमि हैं।

वेदों में कई स्थलों पर 'भूत' शब्द आया है, जिसका अर्थ पौराणिक भूत-प्रेत नहीं है—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। (यजुः १३।४)

वहां 'भूतस्य' शब्द का अर्थ महर्षि दयानन्द अपने 'सस्कार-विधि' ग्रन्थ में करते हैं—'उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का।'

उव्वट—'भूतस्योत्पन्नस्य प्राणिजातस्य।'

महीधर—'भूतस्य प्राणिजातस्य।' (शुक्ल यजुर्वेदभाष्य)

पं० जयदेव शर्मा, विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ—'भूतस्य' इस उत्पन्न होने वाले विश्व का (यजुर्वेद भाषाभाष्य)।

यहां महर्षि दयानन्दजी और शर्मा जी के एक अर्थ हैं। और उव्वट, महीधर 'प्राणी' अर्थ करते है।

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्नेवानु पश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥ (यजुः ४०।६)

उव्वट—'भूतानि चेतनाचेतनानि।'

महीधर—'भूतानि अव्यक्तादीनि स्थावरान्तानि चेतनानि।'
(शुक्ल यजुर्वेदभाष्य)

पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र, विद्यावारिधि—(भूतानि) प्राणियों को। (यजुर्वेद मिश्र भाष्य, उत्तरार्ध)

पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार—'प्राणियों को'
(ईशोपनिषद् भाष्य)

महात्मा नारायण स्वामीजी—(भूतानि) चराचर जगत्।
(ईशोपनिषद् भाष्य)

आचार्य वीरेन्द्रजी शास्त्री काव्यतीर्थ, एम० ए०—'चराचर जगत्'। (ईशोपनिषद् भाष्य)

इसी प्रकार 'यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।' (यजुः ४०।७) मे भी आचार्य वीरेन्द्रजी शास्त्री—'चराचर जगत्'; स्वामी ब्रह्मनुनिजी—प्राणी'; महात्मा नारायण स्वामीजी—'चराचर जगत्'; पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार—'प्राणी' ऐसा अर्थ अपनी ईशोपनिषद् की टीकाओं में करते हैं।

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।' (यजुः ३६।१८)

अर्थात् हे परमात्मन्! सम्पूर्ण प्राणिवर्ग मुझे मित्र की दृष्टि से देखें।

यहां महीधर—'भूतानि प्राणिनः'; और विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र'—भूतानि' का अर्थ 'प्राणी' अपने मिश्र भाष्य' में करते है।

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिल्लोका अधिश्रिताः।
(यजुः २०।३२)

अर्थात् जो परमात्मा सब भूतों=समस्त प्राकृतिक पदार्थों का स्वामी है, और जिसमें लोकलोकान्तर आश्रित हैं।

एतावानस्य महिमा अतो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥
(ऋ० १०।९०।३) तथा (यजुः ३१।३)

यह सम्पूर्ण विश्व (विश्वा भूतानि) अर्थात् जड़ जङ्गम संसार उस ब्रह्म के केवल एक अंश में है। ब्रह्म उसके बाहर भी अमृत रूप अनन्त है।

यहां पर भी 'महीधर' ने 'भूतानि' का अर्थ 'प्राणिजातानि' किया है।

विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने 'भूतानि' का अर्थ 'तीन काल में वर्तने वाले प्राणिसमूह' ऐसा अपने मिश्र भाष्य के उत्तरार्ध में किया है।

पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु मनसा धिया।
पुनन्तु विश्वा भूतानि पवमानः पुनातु मा
(अथर्व० ६।१९।१०)

सम्पूर्ण भूत=मनुष्यमात्र अथवा प्राणिमात्र अथवा पदार्थमात्र मुझ को पवित्र करें।

पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ 'अथर्ववेद संहिता, भाषाभाष्य' में 'विश्वा भूतानि' का अर्थ समस्त प्राणिगण करते हैं।

उपनिषदों में भी इस प्रकार के प्रयोग भरे पड़े हैं—

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रति रूपो बहिश्च।
(कठोपनिषद् बल्ली ५।१०)

जिस प्रकार एक वायु सम्पूर्ण भुवन में विद्यमान है, और प्रत्येक वस्तु में तद्रूप भासता है, उसी प्रकार एक परमात्मा सब भूतों=प्राणियों के भीतर प्रविष्ट है। और उस उस रूप में व्यापक होने से उस-उस रूप वाला जैसा है। परन्तु साथ ही साथ वह उसके बाहर भी है।

अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम्, अन्नाद् भूतानि जायन्ते।
(तैत्ति० अनु० खं० २)

अन्न सब प्राकृतिक पदार्थों में बड़ा है। अन्न से सब प्राणी उत्पन्न होते हैं।

एषां भूतानां पृथिवी रसः।

(छांदोग्य० प्रपा० १, खं० १, अ० २)

इन सब प्राणियों का पृथिवी सार है।

योगिराज सनत्कुमार के यह पूछने पर कि पहले मुझे बतलाइए कि आपने क्या-क्या पढ़ा है। तत्पश्चात् मैं आपका शिक्षण करूंगा। जिज्ञासु नारदजी ने कहा—

···देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजन-विद्यामेतद् भगवोऽध्येमि···।

(छांदोग्य० अ० ७, खं० १, मं० २)

अर्थात् हे भगवन्! मैं देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या अर्थात् आधिभौतिकशास्त्र, क्षत्रविद्या=धनुर्विद्यादि, नक्षत्रविद्या=ज्योतिष-शास्त्र तथा शिल्प आदि विद्या को जानता हूं।

यहां भूतविद्या से यह तात्पर्य नहीं है कि वे झाड-फूंक आदि जानते थे, वरन् आधिभौतिकशास्त्र के ज्ञाता थे।

स एवंवित् सर्वेषां भूतानामात्मा भवति···। एवंविदम् सर्वाणि भूतानि अवन्ति···॥ (बृहदा० अ० १, ब्रा० ५, क० २०)

अर्थात् जो ऐसा जानता है, वह सब भूतों=प्राणिमात्र का आत्मा अर्थात् प्रिय हो जाता है। इस प्रकार जानने वाले की सब भूत=प्राण रक्षा करते हैं।

मनुस्मृति में भी 'भूत' शब्द इन अर्थों में विद्यमान है। यथा—

मनुस्मृति अ० १, श्लोक १६ में 'सर्वभूतानि निर्ममे' है।

यहां भूत शब्द का अर्थ प्राणी ही है । पं० तुलसीराम स्वामी, स्वामी दर्शनानन्दजी, पं० आर्यमुनि तथा अन्य टीकाकारों ने यही अर्थ किया है ।

मनुस्मृति अ० १ श्लोक ८० तथा ८१ में पञ्चमहायज्ञ का वर्णन हैं । इसमें एक भूतयज्ञ है ।

सांख्यशास्त्र में भूत शब्द का अर्थ प्राकृतिक संघात है—

अहंकारात् पञ्चतन्मात्राणि पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि ।
(सांख्य० अ० १, सूत्र ६१)

अहंकार से पंच तन्मात्रा=सूक्ष्म भूतों का रूप, तथा तन्मात्राओं से स्थूल भूत अर्थात् पंच महाभूत पृथिवी आदि ।

न भूतचैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः सांहत्येऽपि च सांहत्येऽपि च ।
(सांख्य० अ० ५, सू० १२६)

अर्थात् कोई प्राकृतिक भूत-संघात चेतन नहीं है । किसी भूत में चेतनता के न होने से उनके संघात में भी चेतनता नहीं हो सकती ।

इसी प्रकार अन्य दर्शनशास्त्रों में जहां कहीं भी 'भूत' शब्द आया है, वहां उसका अर्थ भूत=योनि-विशेष नहीं है ।

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा प्रलीयते···। (गी० ८।१९)

यहां भूत का अर्थ प्राणी है । पं० नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ ने अपने 'गीता-विमर्श' की प्रथमावृत्ति में प्राणी ही अर्थ किया है ।

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर··· । (गीता १५।१६)

दो प्रकार का जगत् है, अर्थात् एक नाशवान्=सम्पूर्ण कार्य जगत्, और दूसरा कूटस्थ अर्थात् प्रकृति, जो नाश नहीं होती ।

गीता में दो-एक स्थल ऐसे हैं, जहां पर लोगों को भ्रम हो सक है कि भूत प्रेत योनिविशेष हैं। यथा—

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥

(गीता ९।२५

अर्थात् देवों का यजन करने वाले देवों, पितृयज्ञ करने वाले पित और भूतों का यजन करने वाले भूतों, और मेरा यजन करने वाले मु को प्राप्त होते हैं।'

यहां भी भूत का अर्थ प्राणी ही है। पं० नरदेव शास्त्री, वेदतं अपने 'गीता-विमर्श' की प्रथमावृत्ति में लिखते है—'देवताओं के वाले देवताओं के पास, पितरों को चाहने वाले पितरों के पास, प्राणि के लिए यज्ञ करने वाले प्राणियों को, और मेरे लिए यज्ञ करने व मेरे पास आते हैं।'

चरक शरीरस्थान अ० ८, ४४ से ६४ तक में आया है कि "भूत-प्रेत आदि नाम मनुष्यों के भी गुण-स्वभाव से हैं।"

यजन्ते सात्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान् भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसाः जनाः ॥

(गीता १७।

गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक पं० कृष्णस्वरूप जी विद्यालङ्कार अ 'गीतामर्म' के प्रथम संस्करण पृष्ठ ५४३ में अर्थ करते हैं—'देव= परोपकारी विद्वान् हैं। यक्ष राक्षस=जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरों हानि करते करते हैं। भूत-प्रेत=जो बिना कारण दूसरों को हा पहुंचाते हैं।'

जब वैदिक विद्या का लोप हो गया, और नाना प्रकार सम्प्रदाय आदि फैल गए, तब भूत-प्रेत का आर्य सभ्यता में प्रचार

गया। मैत्र्युपनिषद् के एक स्थल से प्रकट होता है कि इस देश में एक समय ऐसा था, जब कि लोक में पाखण्डियों ने भूत-प्रेतादि भ्रामक विचारों की ओर जनता को आकर्षित करना प्रारम्भ कर दिया था। और देश के विद्वान् लोग जो अपने आपको वैदिक कहते थे, ऐसे लोगों का तिरस्कार करते थे। यथा—

ये चान्ये चाटजटनटभटप्रव्रजितरंगावतारिणो राजकर्मणि पतितादयोऽथ ये चान्ये ह यक्षराक्षसभूतगणपिशाचोरगग्रहादीनामर्थं पुरस्कृत्य शमयाय इति एवं ब्रुवाणा, अथ ये चान्ये ह वृथा कषायकुण्डलिनः कापालिनोऽथ ये चान्ये ह वृथा तर्कदृष्टान्तकुहकेन्द्रजालवैदिकेषु परिस्थातुमिच्छन्ति तैः सह न संवसेत। प्राकाश्यभूता एवैते तस्करा अस्वर्ग्या इत्येवं ह्यामहे। नैरात्म्यवादकुहकैर्मिथ्यादृष्टान्तहेतुभिः भ्राम्यन् लोको न जानाति वेदविद्यातन्तु यत्। (मैत्र्यु० खं० ८)

'अर्थात् बहुत से लोग यक्ष, राक्षस, पिशाचोरग ग्रहादि का नाम लेकर कहते हैं कि हम उनका शमन कर सकते हैं, अथवा अन्य जो वृथा कषाय कुण्डल तथा कपाल को धारण किए फिरते हैं, अथवा जो वृथा तर्क, दृष्टान्त, इन्द्रजाल दिखला कर वैदिक लोगों में घुसना चाहते हैं, उनके साथ निवास नहीं करना चाहिए। वह प्रत्यक्ष तस्कर हैं सुख और शान्ति से गिराने वाले हैं, जैसा कि कहा गया है। आत्मज्ञान के प्रतिकूल मिथ्या तर्क और दृष्टान्त से भ्रमाए हुए लोग वेदविद्या के वास्तविक रहस्य को नहीं जान पाते।'

उपर्युक्त कथन प्रत्यक्ष भांति में उस युग का पता दे रहा है, जब कि जनता में इस प्रकार से मिथ्या बातों के फैलाने वाले लोग उत्पन्न हो गए थे। और उस समय के वैदिक लोग ऐसे पुरुषों को तिरस्कृत करने का उद्योग कर रहे थे।

इन उपर्युक्त सब प्रमाणों से स्पष्ट प्रकट होता है कि आर्ष साहित्य में कहीं भी भूत शब्द लोक-प्रसिद्ध वा पौराणिक भूत योनिविशेष का समर्थन=द्योतन नहीं करता है, और न उनमें कहीं कोई आधार मिलता है। यह वेदों और आर्ष ग्रन्थों के अभ्यास और अनुशीलन के अभाव का कारण है कि जब भूत शब्द हमारे सम्मुख आता है, तो तुरन्त इस भूत योनि और कल्पित भूत का भाव, जिसको एक प्रकार से हम अपनी माता के दुग्धपान के समय पीकर अपना साथी होआ आदि के सदृश बना लेते हैं।

पुनर्जन्म का सुदृढ़ वैज्ञानिक सिद्धान्त, जो वैदिक-धर्म और हिन्दू-धर्म का सर्वतन्त्र सिद्धान्त है, वास्तव में प्रचलित भूत प्रेत योनि के विरुद्ध है। जीवात्मा एक शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीर को शीघ्र प्राप्त होने की क्रिया में क्रम-बद्ध हो जाता है, और मोक्ष के प्राप्त होने तक इस चक्र से छुटकारा नहीं पाता।

ईसाई और मुसलमान भूत-प्रेत को अधिक मानते हैं। न्यू टेस्टा-मेन्ट में आया है कि ईसामसीह ने कई लोगों के देह से भूत उतारे थे। जो वास्तव में मूर्खता के सिवाय और कुछ नहीं है। महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने अपने 'सत्यार्थ-प्रकाश' त्रयोदश समुल्लास में बाइबिल की समीक्षा करते हुए यीशु के उस चमत्कारिक कार्य को केवल ढोंग बतलाया है।

यहां एक लड़की का उदाहरण दिया जाता है। जिससे प्रकट हो जायगा कि भूत-प्रेत का विचार कितना मिथ्या है—

भूतरूपी लड़की का रहस्य (Ghoshgirl Mystery)—'रोमानिया की एक लड़की जिसका नाम इलयूनोर जूगन [Eleonora Jugan] था, और जो भूत के रूप में थी, परीक्षार्थ लन्दन सितम्बर १९२६ ई० में लाई गई थी। वह निनादपूरित भूत समझी जाती थी,

और उसके शरीर पर अनायास किली नोकदार आले से किए हुए छिद्रमय चिह्न (Stigmatic markings) प्रकट होते थे। रसायनशाला में जांच करने के बाद वैज्ञानिकों ने अपनी सम्मति दी कि—लड़की लड़कपन में प्रकट होता है कि भूत प्रेत की गढ़ी हुई कहानियों से भयभीत हो चुकी है। उसके हृदय से यदि यह भय दूर कर दिया जावे, तो शरीर पर चिह्नों का होना बन्द हो जायगा। डाक्टर आर० जे० टिलयार्ड (Dr. R. J. Tillyard) ने लड़की और उसके साथियों का उसी समय एक परीक्षण करके दिखलाया कि बिना किसी प्रकार की गति पहुंचाए किस प्रकार छोटी-छोटी वस्तुएं गतिमान् हो गईं।[1]

श्री एच० पी० हेनेस (Mr. H. P. Hayness) नामक विद्वान् अपनी पुस्तक 'Immortality' (इमोरटलिटी) में लिखते हैं—'दृष्टि-विभ्रम से एक ओर तो भूत देखा जाता है, और पुनः दूसरी ओर परचित्त ज्ञानवाद द्वारा उस पर दूसरी रङ्गत चढ़ जाती है। और इस प्रकार कल्पित भूत फिर विभ्रम का भूत नहीं रहता, किन्तु वास्तविक कहलाने लगता है।'

सर आलीवर लाज (Sir Oliver Lodge) अपनी पुस्तक 'Survival of man' (सुरविवल आफ मैन) में लिखते हैं—'कल्पना करो कि भूत-प्रेतों की कोई प्राकृतिक सत्ता नहीं है, वह चित्त संस्कार (Impression) अथवा छायामात्र है, जो ग्राहक के मस्तिष्क में पड़ा है—और जो उस संस्कार अथवा छाया के रूप है, जो किसी दूसरे पुरुष के मस्तिष्क में उत्पन्न हुआ है, और एक तीसरे व्यक्ति द्वारा पहले व्यक्ति के मस्तिष्क में परिवर्तित किया गया है।'

श्री गङ्गाप्रसाद उपाध्याय. एम० ए० भी अपनी पुस्तक

[1] Daily 'Ieader' Allahabad 23-3-1927.

'जीवात्मा' पृष्ठ १९५-१९६ में भूत, चुड़ैल आदि योनियों की आलोचना करते हुए लिखते हैं—

'···इन कल्पनाओं ने व्यर्थ ही मनुष्य जाति में भय उत्पन्न कर रक्खा है। सैकड़ों धोखेबाज लोग दूसरों को लूटते हैं, और बहुत से भय के मारे मर भी जाते हैं ···।'

८—ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाने से पुण्य—

ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो यस्तु तुलसीमूलमृत्स्नया।
गोपिकाचन्दनेनापि चित्रकूटमृदापि वा।
गङ्गामृत्तिकया चैव तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२६॥

[ना० पु० अध्याय १३]

अर्थ—जो तुलसी की जड़ के पास की मृत्तिका से, गोपीचन्दन से, चित्रकूट की मृत्तिका से, वा गङ्गा जी की मृत्तिका से 'ऊर्ध्वपुण्ड्र' लगाता है, उसके पुण्यफल को आप मेरे कहने से ही समझ सकेंगे।

विमानवरमारुढो गन्धर्वाप्सरसां गणैः।
सङ्गीयमानचरितो मोदते विष्णु-मन्दिरे ॥२७॥

[ना० पु० अ० १३]

अर्थ—वह विष्णुलोक में जाकर श्रेष्ठ विमान में बैठता है, और गन्धर्व तथा अप्सराओं के दल उसके चरित्र का गान करते हैं।

समीक्षा—'ऊर्ध्वपुण्ड्र' चन्दन लगाना वैष्णवों का मत है। यह साम्प्रदायिक श्लोक है। अन्य पुराणों में 'त्रिपुण्ड्र' की भी चर्चा है। कहीं 'ऊर्ध्वपुण्ड्र' की प्रशंसा है, तो कहीं 'त्रिपुण्ड' की प्रशंसा है। 'ऊर्ध्वपुण्ड्र' व 'त्रिपुण्ड्र' चन्दन लगाना दोनों ही अवैदिक है। वेदों में कहीं भी इसकी चर्चा नहीं है।

९—शालग्राम जी पर तुलसी-दल चढ़ाने से विष्णुलोक—

शालग्रामेऽर्पयेद्यस्तु तुलस्यास्तु दलानि च ।
स वसेद्विष्णुभवने यावदाभूतसंप्लवम् ।।३१।।
[ना० पु० अ० १३]

अर्थ—जो 'शालग्रामजी' पर तुलसीदल चढ़ाता है वह प्रलय तक विष्णुलोक में रहता है ।

समीक्षा—'शालग्राम' पत्थर पर तुलसीदल चढ़ाना भी वैष्णवों की लीला है । यह भी साम्प्रदायिक श्लोक है । मूर्तिपूजा अवैदिक है ।

यजुर्वेद में 'न तस्य प्रतिमा अस्ति ।' (यजुः ३२।३)

जो सब जगत् में व्यापक है, उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिणाम सादृश्य वा मूर्ति नहीं है ।

शालग्राम की पूजा क्यों प्रचलित हुई ?—

नारद उवाच—

नारायणश्च भगवान्वीर्याधानं चकार ह ।
तुलस्यां केन रूपेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ।।

श्री नारायण उवाच—

नारायणश्च भगवान्देवानां साधनेषु च ।
शङ्खचूडस्य कवचं गृहीत्वा विष्णुमायया ।।
पुनर्विधाय तद्रूपं जगाम तत्सतीगृहम् ।
पातिव्रतस्य नाशेन शङ्खचूडजिघांसया ।।

दुन्दुभिर्वादयामास तुलसीद्वारसन्निधौ ।
रेमे रमापतिस्तत्र रमया सह नारद ।।

सा साध्वी सुखसम्भोगादाकर्षणव्यतिक्रमात् ।
सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच सा ॥

तुलस्युवाच—

को वा त्वं वद मायेश ! भुक्ताऽहं मायया त्वया ॥१८॥

दूरीकृतं मत्सतीत्वं यदतस्त्वां शपामि हे ।
तुलसीवचनं श्रुत्वा हरिः शापभयेन च ॥१९॥

दधार लीलया ब्रह्मन् सुमूर्ति सुमनोहराम् ।
ददर्श पुरतो देवी देवदेवं सनातनम् ॥२०॥

पाषाणहृदयस्त्वं हि दयाहीनो यतः प्रभो !
तस्मात्पाषाणरूपस्त्वं भवेदेव भवाधुना ॥

ये वदन्ति च साधुं त्वां ते भ्रान्ता हि न संशयः ।
भक्तो विनाऽपराधेन परार्थे च कथं हतः ।
भृशं रुरोद शोकार्ता विललाप मुहुर्मुहुः ॥

इयं तनुर्नदीरूपा गण्डकीति च विश्रुता ।
तव केशसमूहश्च पुण्यवृक्षो भविष्यति ।
तुलसी केशसंभूता तुलसीति च विश्रुता ॥

त्रिषु लोकेषु पुष्पाणां पत्राणां देव पूजने ।
प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने ॥

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गोलोके मम सन्निधौ ।
भव त्वं तुलसी वृक्षवरा पुष्पेषु सुन्दरी ॥

अहं च शैलरूपेण गण्डकीतीरसन्निधौ ।
अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापतः ॥

[illegible] वा वरायुधैः
[illegible] दोयकम् ।

पु परिग्रहण क्रमांक . 2823
[illegible] महिला महाविद्यालय, कुरुक्षेत्र

शालग्रामञ्च तुलसीं शङ्खं चैकत्र एव च ।
यो रक्षति महाज्ञानी स भवेच्छ्रीहरेः प्रियः ।।

[देवीभागवतं पुराणम् ९ स्कन्धे, २४ अध्यायः][1]

अर्थ—इसी तुलसी के शाप से विष्णु भगवान् प्रस्तरत्व को प्राप्त हुए हैं। जिस प्रस्तर को आजकल शालग्राम कहते हैं। शङ्खचूड़ नाम का एक असुर था। उसकी स्त्री का नाम तुलसी था। यह परम पतिव्रता थी। और ये दोनों दम्पति विष्णु-भक्ति परायण थे। इसके पातिव्रत्य के प्रताप से संग्राम में शङ्खचूड़ परास्त नहीं होता था। इसलिए विष्णुजी प्रथम दान में माया से शङ्खचूड़ का कवच मांग लाये। पश्चात शङ्खचूड़ के सदृश ही रूप धारण करके तुलसी के पातिव्रत धर्म के नाश से शङ्खचूड़ की घात की इच्छा से तुलसी के द्वार पर दुन्दुभि बजाते हुए भगवान् पहुंचे।

अनेक प्रकार के छल-बल कर तुलसी को "यह निश्चय मेरे ही स्वामी हैं" ऐसा विश्वास करवा उसके सतीत्व का विध्वंस किया, परन्तु अन्त में तुलसी को सब वार्त्ता ज्ञात हो गई। बहुत शोकार्ता हो वह बोली। तू बड़ा ही निष्ठुर और कपटी है। तेरा हृदय पत्थर के समान है। इसलिए तू आज से पृथ्वीरूप हो जा। निःसन्देह जो तुझ को साधु कहते हैं वे भ्रान्त हैं। तू ने अपने भक्त को विना अपराध के दूसरे के लिए क्यों मारा है। इतना कथन कर वह अत्यन्त विलाप करने लगी।

---

१. "श्रीमद्देवीभागवत पुराणम्" उत्तरार्द्धम् पृष्ठ ८७८ ने ८८२ (विक्रम सं० २०१७ मनसुखराय मोर, ५ क्लाइवरो, कलकत्ता १ संस्करण)।

तुलना करो—"शिव-पुराण" रुद्र संहिता २ युद्धखण्ड ५, अध्याय ४०-४१।

विष्णु ने भी इसे शोकार्ता देख, भरोसा दे बोले कि—तुम्हारा यह शरीर जगत् में गण्डकी नदी प्रसिद्ध होगी। और तुम्हारे ये केश समूह पवित्र वृक्ष होंगे। तुलसी के केश से होने के कारण यह तुलसी कहलाती है। तीनों लोकों में स्वर्ग, मर्त्य, पाताल सर्वत्र इससे श्रेष्ठ पुष्प नहीं होगे। हे तुलसी! तुम सर्वत्र मेरे पास निवास करो। तुम्हारे बिना मेरी पूजा वृथा है। तुम्हारे सेवन से गति-मुक्ति सब ही होगी और मैं तुम्हारे शाप से गण्डकी के तीर पर पत्थर होकर निवास करूंगा। वहां तीक्ष्ण दन्त के सहस्रों कीड़े उस शिला के छिद्र में मेरा चक्र बनावेंगे। शालग्राम, तुलसी, शङ्ख और चक्र ये चारों जो रक्खेंगे वे महाज्ञानी लक्ष्मी के और मेरे प्रिय होंगे।

समीक्षा—शालग्राम की यह कथा कितनी अश्लील और विष्णु पर लांछन लगाने वाली है। पौराणिक विष्णु को परमात्मा मानते हैं, तो क्या सामर्थ्यवान् नहीं? वेद-विरुद्ध छल-कपट करके एक पतिव्रता स्त्री का शील भङ्ग करना परमात्मा का कार्य हो सकता है? यह तो कैसी व्यभिचारी, दुष्ट, पामर व्यक्ति का कार्य है।

जिस प्रकार 'शिवलिङ्ग पूजा' के सम्बन्ध में अश्लील कथा पुराणों है, उसी प्रकार शालग्राम की पूजा के सम्बन्ध में भी पुराणकार ने छन लगाया है।

यदि विष्णु सामर्थ्यवान् होते तो वे क्या शङ्खचूड़ को परास्त नहीं र सकते थे? उनका कार्य तो ऐसा है जिससे समस्त पौराणिकों का ह काला होता है।

आश्चर्य है कि इसी शालग्राम की पूजा का विधान 'नारद-पुराण' ता है।

जिस शालग्राम की पूजा होती है वह यथार्थ में पाषाण नहीं है ो एक प्रकार का घोंघा (Shell) है। ये बहुत प्रकार के होते हैं

कोई बहुत छोटे होते हैं और कोई चक्र के समान होते हैं। इसी को अंग्रेजी में 'एमानाइटस' (Amonits) कहते हैं। यह वैज्ञानिक नाम है। गण्डकी नदी में बहुत मृत और जीवित भी पाए जाते हैं।

यदि पौराणिक-पुराण की उक्त कथा को सत्य मानते हैं तो तुलसी के शाप से उत्पन्न शालग्राम की पूजा करना भी क्रियात्मक पाप है।

१०—मनुष्य की अस्थि गंगा में प्रवाह करने से विष्णु लोक की प्राप्ति—

यस्यास्थि भस्म वा राजन् गङ्गायां क्षिप्यते नरैः।
स सर्वपापनिर्मुक्तः प्रयाति भवनं हरेः ॥६४॥

[ना० पु०, अध्याय, १५]

अर्थ—आदमी जिस मनुष्य की अस्थि वा भस्म को गङ्गा जी में फेंक देते हैं वह पुरुष सब पापों से मुक्त हो विष्णु लोक को चला जाता है।

समीक्षा—मृत व्यक्ति की अस्थि वा भस्म को गङ्गाजी में फेंकने से विष्णु लोक में जाना पुराणकार का गप्प है। इससे तो सभी विशेष पाप इसलिए करेंगे कि उनकी अस्थि वा भस्म गङ्गा में डाल दी जावेगी और वे सब पापों से मुक्त हो जायेंगे। यह भ्रम नहीं तो क्या है? वेदादि शास्त्रों के सर्वथा विपरीत है। महर्षि दयानन्दजी हरिद्वार में हरकी पौड़ी के सम्बन्ध में लिखते हैं—

"हरकी पौड़ी एक स्नान के लिए कुण्ड की सीड़ियों को बनाया है। सच पूछो तो हाड़पैड़ी है क्योंकि देशदेशान्तर के मृतकों के हाड़ उसमें पड़ा करते हैं। पाप कभी नहीं छूट सकता, बिना भोगे, अथवा नहीं कटते।[1]

---

१. सत्यार्थप्रकाश एकादश समुल्लास।

अतः बिना पाप को भोगे केवल अस्थि वा भस्म गङ्गा में फेंकने से विष्णुलोक में जाना पुराण का लिखना गप्प है।

११—जाली सिद्धिदाता मन्त्र—

नमो नारायणायेति जपेत्प्रणवपूर्वकम् ।
नमो भगवते प्रोच्य वासुदेवाय तत्परम् ॥३८॥

[नारद-पुराण अध्याय १६]

अर्थ—"ॐ नमो नारायणाय" इस (अष्टाक्षर) मन्त्र को जपे और हे महाराज ! 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यह द्वादशाक्षर मन्त्र कहा है, आठ और बारह अक्षरों वाले इन दोनों मन्त्रों का फल समान है।"

समीक्षा—ये दोनों मन्त्र साम्प्रदायिक हैं। 'वासुदेव' कृष्ण को कहते हैं। कृष्ण की भक्ति प्रचलित करने के लिए वैष्णवों की यह लीला है। दोनों मन्त्र अवैदिक हैं। 'गायत्री' जप ही वैदिक पद्धति है।

१२—शङ्कर की जटा से गङ्गा की उत्पत्ति—

कपर्दिनो जटास्रस्ता गङ्गा लोकैक पाविनी ।
पावयन्ती जगत्सर्वमन्वगच्छद्भगीरथम् ॥१०६॥

[नारद पुराण, अध्याय १६]

अर्थ—"उधर जटाजूटधारी भगवान् शङ्कर की जटाओं से निकल कर संसार को पवित्र करने वाली गङ्गा सकल जगत् को पवित्र करती हुई भगीरथ के पीछे-पीछे चल दी।

समीक्षा—गङ्गा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पुराणों की यह कल्पना ही है। पुराणकार को भूगोल का भी ज्ञान नहीं है। यदि पौराणिक इसे सत्य मानते हैं तो शङ्कर की जटा से निकलने से गङ्गा उनकी पुत्री लगी। मानवमात्र के पिता शङ्कर जी हुए। जो लोग

गङ्गा-जल को शिवलिङ्ग पर चढ़ाते हैं वे अत्यन्त पामर हैं। क्या पुत्र का यही धर्म है कि पिता के लिङ्ग (कामध्वज, उपस्थेन्द्रिय) पर लड़की को चढावे। यह वाममार्ग नहीं तो क्या है?

१३—ईश्वरावतार की कल्पना—

जगद्धितार्थं ये देहा ध्रियन्ते लीलया हरेः।
तानर्चयन्ति, विबुधाः स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥३७॥
[नारद-पुराण, अध्याय १६]

अर्थ—जो संसार का हित करने के लिए लीलावश अवतार धारण कर लेते हैं और देवता जिनका पूजन करते हैं, वह विष्णु मुझ पर प्रसन्न हो।

समीक्षा—'विष्णु' परमात्मा का नाम है जैसा कि पीछे बतलाया जा चुका है। परमात्मा का अवतार नहीं होता है। यजुर्वेद अ० ४० मन्त्र ८ के अनुसार परमात्मा अवतार नहीं धारण कर सकता है। अतः यह अवैदिक सिद्धान्त है।

१४—एकादशी के दिन भोजन करना पाप है—

एकादशीदिने यस्तु भोक्तुमिच्छति मानवः।
स भोक्तुं सर्वपापानि स्पृहयालुर्न संशयः ॥६॥
[नारद-पुराण, अध्याय २३]

अर्थ—जो मनुष्य एकादशी के दिन भोजन करना चाहता है उसका मानो सब पापों को भोगने का चाव है।

समीक्षा—एकादशी के दिन भोजन करने से पाप लगता है यह अवैदिक मत है। व्रत इसलिए किया जाता है कि शरीर की शुद्धि हो पेट ठीक हो जाय। वह किसी दिन भी किया जा सकता है।

'एकादशी' की आलोचना करते हुए महर्षि दयानन्दजी सरस्वती लिखते हैं—"... जो एकादशी का व्रत चलाया है उसमें अपना स्वार्थपन ही है और दया कुछ भी नहीं, वे कहते हैं—'एकादश्यामन्नेपापानि वसन्ति ।' जितने पाप हैं वे सब एकादशी के दिन अन्न में बसते हैं । इस पोपजी से पूछना चाहिए कि किस के उसमें पाप बसते है ? तेरे वा तेरे पिता आदि के । जो सब के सब पाप एकादशी में जा बसे तो एकादशी के दिन किसी को दुःख न रहना चाहिए । ऐसा तो नहीं होता किन्तु उल्टा क्षुधा आदि से दुःख होता है, दुःख पाप का फल है । इससे भूखे मरना पाप है । इसका बड़ा माहात्म्य बनाया है जिसकी कथा बांच के बहुत ठगे जाते हैं ।"[1]

अतः यह पोप लीला है ।

१५—कलिवर्ज्य—

समुद्रयात्रास्वीकारः कमण्डलुविधारणम् ।
द्विजानामसवर्णासु कन्यासूपयमस्तथा ॥१३॥
देवराच्च सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः ।
मांसादनं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा ॥१४॥
दत्ताक्षतायाः कन्यायाः पुनर्दानं वराय च ।
नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं च नरमेधाश्वमेधकौ ॥१५॥
महाप्रस्थानगमनं गोमेधश्च तथा मखः ।
एतान्धर्मान्कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः ॥१६॥

[नारद-पुराण, अध्याय-०४]

अर्थ—समुद्रयात्रा का स्वीकार, कमण्डलुधारण (संन्यास), द्विजों का असवर्ण कन्याओं से विवाह, देवर से पुत्र की उत्पत्ति, मधुपर्क

---

१. सत्यार्थप्रकाश एकादश समुल्लास ।

में पशुवध, श्राद्ध में मांस-भक्षण, वानप्रस्थाश्रम, (वाणीमात्र से) दी हुई अक्षता कन्या का वर को पुनर्दान, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, नरमेध, अश्वमेध, महाप्रस्थान करना, गोमेधयज्ञ, इन धर्मों को कलियुग में विद्वान् पुरुषों ने 'वर्ज्य' कहा है।

समीक्षा—'कलिवर्ज्य-प्रकरण' एक प्रकार का ढोंग मात्र है। इसे कोई भी पौराणिक नहीं मानता है। यदि ये शुभकर्म अन्य युगों में धर्म थे, तो कलियुग में अधर्म क्यों हैं? महात्मा गांधी, पं० मदनमोहन मालवीय, लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक तथा अन्य कई पौराणिक नेता, विद्वान् समुद्रयात्रा कर चुके और अभी भी करते हैं। आद्य स्वामी शङ्कराचार्य जी ने कलि में संन्यास लिया और लाखों उनके अनुयायी सन्यासी हैं। आजकल धर्म के ठेकेदार श्री स्वामी करपात्री जी तथा पुरी के शङ्कराचार्य प्रभृति क्यों संन्यासी हैं? 'देवर' को निरुक्त में द्वितीय वर कहा है। अतः विधवा-विवाह वेदानुकूल है। बङ्गाल के सुप्रसिद्ध पौराणिक विद्वान् पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जी ने 'विधवा-विवाह' पर शास्त्रार्थ किए, पुस्तक लिखी तथा विधान बनवाकर विधवा की सन्तान को उचित और सम्पत्ति का अधिकार दिलवाया। मधुपर्क में कभी पशुवध नहीं होता था। मृतक श्राद्ध अवैदिक हैं। वानप्रस्थी भी आज सहस्रों, लाखों पौराणिक हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारी भी हैं। निरञ्जनी अखाड़ा में जाकर कोई भी देख सकता है। नरमेध, अश्वमेध, गोमेध का अर्थ पौराणिक नर अश्व व गौ का वध मानते हैं, जो भ्रममात्र है।

अश्वमेध—"राष्ट्रं वा अश्वमेधः।"

[शतपथ ब्रा० १३।१।६।३]

राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे, विद्यादि देनेहारा यजमान और अग्नि में घी आदि का होम करना 'अश्वमेध' है।

गोमेध—"अन्नं हि गौः" । [शतपथ ब्रा० ४।३।१।२५]

अन्न, इन्द्रियां, किरण, पृथिवी आदि को पवित्र रखना 'गोमेध' यज्ञ है ।

नरमेध—जब मनुष्य मर जाय, तब उसके शरीर का विधिपूर्वक दाह करना 'नरमेध' कहलाता है ।[1]

'कलिवर्ज्य' का स्वरूप भी अनिश्चित है—

'आदित्यपुराण' में कुल पांच कलिवर्ज्य बताए हैं ।

'ब्रह्मपुराण' में उनकी संख्या सात हो गई है ।

धर्मशास्त्रकारों को 'कलिवर्ज्य' का महत्त्व मान्य नहीं था ।

बारहवीं शताब्दी के 'स्मृतिचन्द्रिका' नामक ग्रन्थ के लेखक श्री वैष्णव भट्ट ने कलिवर्ज्य का उल्लेख कर विश्वरूप, मिताक्षराकार, स्मृतिसमुच्चयकार, श्रीकर, देवस्वामी को मूर्ख बताया है ।

भिन्न-भिन्न पुराणों तथा अपरार्क, हेमाद्रि, स्मृतिचन्द्रिका, पाराशरमाधव, निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थों में 'कलिवर्ज्य' के जो वचन मिलते हैं, उनसे पता चलता है कि उनमें समय-समय पर नये-नये वचन जोड़े गए हैं ।

'अपरार्क' ने जिसको उद्धृत किया है, उस ब्रह्मपुराण के वचन में सात काम निषिद्ध हैं, तो इस नारद-पुराण में १३ कामों को निषिद्ध माना है । 'स्मृति-चन्द्रिका' में कलिवर्ज्य की तालिका पर्याप्त लम्बी है, जो लगभग पचास हो गई है ।

संन्यास तथा अग्निहोत्र अब भी चालू हैं ।

---

१. विशेष जानकारी के लिए द्रष्टव्य:—पं० विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार कृत "वैदिक पशुयज्ञ-मीमांसा" पुस्तक ।

'निर्णय-सिन्धुकार' ने कलिवर्ज्य की शान न जाय, इसलिए कहा कि अमुक तरह का संन्यास और अमुक प्रकार का अग्न्याधान कलिवर्ज्य में नहीं आता। किन्तु मूल वचनों का वैसा विशेष अर्थ क्यों कर लिया जा सकता है, इसका कोई कारण नहीं दिया गया है।

'मनुस्मृति' में भिन्न-भिन्न युगों के लिए भिन्न-भिन्न धर्म बताने वाले वचन होने पर भी 'मनुस्मृति' के प्रसिद्ध टीकाकार पं० मेधातिथि जी ने अपना सिद्धान्त बतलाया है—

'तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते'—तपःप्रभृतीनां वेदे युगभेदेन विधानाभावात् सर्वदा सर्वाण्यनुष्ठेयानि। अयं त्वनुवादो यथाकथंचिदाख्येयः।

अर्थात् उनका मतलब वैसा नहीं है, क्योंकि वेदों में तप आदि का उपयोग हर युग में अलग नहीं बताया है। इसलिए सब धर्म सभी युगों में अमल करने के लिए हैं।

स्वयं 'नारद-पुराण' के लेखक ने ही कहा है—

श्रुतिप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ॥६२॥

[नारद-पुराण, अध्याय २०]

अर्थ—वेद जिसका प्रतिपादन करे, वह धर्म है। वेदविरुद्ध कर्म अधर्म कहलाता है।

इससे 'कलिवर्ज्य' मिथ्या है। वेदों के विरुद्ध होने से अमान्य है।

१६—संन्यासी को नग्न रहना—

नग्नो वा जीर्णकौपीनो भवेन्मुण्डो यतिर्द्विजः।
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ॥९४॥

[ना० पु०, अध्याय २७]

अर्थ—वह द्विज संन्यासी नंगा रहे वा पुराना लंगोटा बांधे, और शिर मुंडाये रहे। शत्रु मित्र मान और अपमान में एक सा रहे।

समीक्षा—संन्यासी को नंगा रहना अवैदिक है। कौपीन धारण करना अनिवार्य है।

१७—कलियुग में ब्राह्मण वर्णसङ्कर—

ब्राह्मणाद्यास्तथा वर्णाः संकीर्यन्ते परस्परम्।
कामक्रोधपरा मूढा वृथा सतापपीडिताः ॥३५॥
[ना० पु०, अध्याय ४१]

अर्थ—ब्राह्मण आदि सब वर्ण परस्पर संकर हो जावेंगे, और मूढ प्रजा काम क्रोध में पड़ कर व्यर्थ ही संताप कर पीड़ा पाया करेगी।

समीक्षा—कलियुग में सभी ब्राह्मण वर्णसङ्कर हैं, इसीलिए तो महर्षि दयानन्दजी सरस्वती महाराज को पं० माधवाचार्य, पं० दीनानाथ शास्त्री प्रभृति अपनी वर्णसङ्करता को छिपाने के लिए कापड़ी कहते व लिखते हैं, जब कि वे औदीच्य ब्राह्मण थे।

पुराणों को अक्षरशः सत्य मानने वाले ब्राह्मणो की स्थिति क्या है, पाठक समझ लें।

इसी प्रकार "देवीभागवत-पुराण" स्कन्ध ६, अ० ११ में कहा है कि—'पूर्वं ये राक्षसाः राजन् ते कलौ ब्राह्मणाः स्मृताः।' पूर्व काल में जो राक्षस थे, वे सभी कलियुग में ब्राह्मण हुए हैं।

इसी राक्षसवृत्ति व वर्णसङ्करता के कारण ये पौराणिक ब्राह्मण आर्य,समाज को गाली देते हैं।

१८ – 'नारद-पुराण' श्रवण से शुद्धि–

महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकैः ।
श्रुत्वैतदार्ष्यं दिव्यं च पुराणं शुद्धिमाप्नुयात् ।।३६।।
[नारद-पुराण, अध्याय १]

अर्थ – ब्रह्महत्या, सुरापान, गुरुस्त्रीसमागम आदि महापातकों से दूषित और लहसुन खाना, शराब पीने वाली स्त्री से समागम आदि उपपातकों से भ्रष्ट पुरुष इस ऋषिप्रोक्त दिव्य पुराण को सुन कर शुद्ध हो जाता है ।

समीक्षा—यदि 'नारद-पुराण' के श्रवण से महापातकों से शुद्धि हो जाती है, तो मुसलमान व ईसाईयों की शुद्धि का विरोध क्यों किया जाता है ? क्या 'नारद-पुराण' के श्रवण से विधर्मियों की शुद्धि नहीं हो सकती है ?

'नारद-पुराण' में बौद्ध मत

बौद्धालयं विशेद्यस्तु महापद्यपि वै द्विजः ।
न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा प्रायश्चित्तशतैरपि ।।५१।।
बौद्धाः पाषण्डिनः प्रोक्ता यतो वेदविनिन्दकाः ।
तस्माद् द्विजस्तान्नेक्षेत यतो धर्मबहिष्कृताः ।।५२।।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि द्विजो बौद्धालयं विशेत् ।
ज्ञात्वा चेन्निष्कृतिर्नास्ति शास्त्राणामिति निश्चयः ।।५३।।
[ना० पु०, अध्याय १५]

अर्थ—बड़ी आपत्ति में पड़ने पर भी जो द्विज बौद्ध मन्दिर में प्रवेश करता है, उसकी सैकड़ों प्रायश्चितों से भी शुद्धि नहीं हो सकती ।।५१।। क्योंकि बौद्ध वेदों की निन्दा करते हैं, पाखण्डी हैं,

तथा धर्म-बहिष्कृत है। अतः द्विज उनकी ओर दृष्टि न डाले ।।५२।। पूर्वोक्त बातों के कारण द्विज यदि जान कर वा अनजान में बौद्ध भवन में घुस जाय, तो जानने पर तो निष्कृति है ही नहीं, यह शास्त्रों का निश्चय है ।।५३।।

समीक्षा—इस पुराण में बौद्ध मत की कटु आलोचना की गई है। इससे ज्ञात होता है कि यह पुराण बौद्ध मत के प्रचलन के बाद बना है। यह आधुनिक है। एक ओर तो पुराण भगवान् बुद्धदेव जी को ईश्वरावतार घोषित करते हैं।[1] और दूसरी ओर इतनी कटु आलोचना करते हैं, यह 'वदतो व्याघात' है।

भगवान् बुद्धदेव वास्तव में एक सुधारक थे। उन्होंने वेदों के उन स्थलों का विरोध किया, जिनके भाष्य से पशुवध वाममार्गियों द्वारा सिद्ध किया गया था। वे वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् नहीं थे, अन्यथा वे वेदों का विरोध न करते। यह उनका दोष नहीं, वरन् भाष्यकारों का दोष था। उन्होंने स्वयं कहा है—

तण्डुलं सयनं वत्थं, सप्पि तेलं च याचिय।
धम्मेन समोधानेत्वा, ततो यञ्जमक आयुं ।।
उपट्ठितस्मि यञ्ञस्मि, नास्सु गावो हनिसुते ।।१२।।

---

१. वराह पुराण ४।२; स्कन्द पुराण, कुमारिका ४०।२५५-२५७; मत्स्य ४७।२४७; ब्रह्मपुराण १२२।६६; पद्मपुराण सृष्टि० ७३।६२; विष्णुपुराण ३।१८; वायुपुराण १११।२७; भागवत पु० १०।४०।२२; अग्नि पुराण ११५।३७; भविष्य पुराण ३।१।६।३६-४२; ब्रह्मवैवर्त-पुराण ४।६।१२; लिङ्ग पुराण २।४८।३१-३२; गरुड़ पु० १।१।३२। [ये सभी प्रमाण 'इतिहास पुराण का अनुशीलन' से लिए गए हैं]

यथा माता पिता भ्राता, अञ्ञे वापि च ञातका ।
गावो तो परमा मित्ता; यासु जायन्ति ओसधा ।।१३।।
[ब्राह्मण धम्मिकसुत्त]

अर्थात् वे प्राचीन ब्राह्मण चावल, शय्या, वस्त्र, घी और तेल को मांग धर्म के साथ निकाल यज्ञ करते थे। यज्ञ उपस्थित होने पर वे गौ को न मारते थे ।।१२।। जैसे माता, पिता, भाई और दूसरे बन्धु हैं, वैसे ही गौवें हमारी परम मित्र हैं, जिनसे कि दवा पैदा होती है ।।१३।।[1]

नोट—वेदों में गौ को अदिति तथा अघन्या कहा गया है, और उसका वध महापाप है।

भगवान् बुद्ध का ईश्वरवादी होना—

अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया ।
अत्तनाव सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं ।।४।।
[धम्मपद, अत्तवग्गो, श्लोक १६०]

त्रिपिटाकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित एम० ए० का अनुवाद—व्यक्ति अपना स्वामी आप है, भला दूसरा कोई उसका स्वामी क्या होगा ? अपने ही को अच्छी तरह दमन कर लेने से वह दुर्लभ स्वामी (निर्वाण) को पाता है।[2]

---

१. अनुवादक श्री धर्मरक्षित; प्रकाशक-महास्थविर ऊकित्तिमा आर्य संघाराम, सारनाथ (वाराणसी)। तुलना करो—पं० धर्मदेवजी विद्यामार्तण्ड कृत "बौद्धमत और वैदिकधर्म, एक तुलनात्मक अनुशीलन" प्रथमावृत्ति, दिल्ली, पृष्ठ ८५।

२. "धम्मपद" पृष्ठ ११६ [मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स, संस्कृत बुक डिपो, कचौड़ी गली, वाराणसी १ द्वारा सन् १९५९ ई० में प्रकाशित, द्वितीय संस्करण]।

भिक्षुजी का अनुवाद अशुद्ध है, और खींचातानी है।

इसका संस्कृत अनुवाद इस प्रकार है—

आत्मा हि आत्मनो नाथः, को हि नाथः परः स्यात्।
आत्मनैव सुदान्तेन, नाथं लभते दुर्लभम् ॥

अर्थात्—'आत्मा ही आत्मा का नाथ' है, और कौन उस (परमात्मा) से बड़ा नाथ व स्वामी हो सकता है? अच्छी प्रकार आत्मा का दमन कर लेने से दुर्लभनाथ (परमात्मा) की प्राप्ति होती है। 'नाथं लभति दुल्लभं' ये शब्द मेरे विचार में अत्यन्त स्पष्ट रूप से दुर्लभनाथ (परमात्मा) का निर्देश करते हैं। यद्यपि अनीश्वरवादी आधुनिक बौद्ध इसका अर्थ निर्वाण कर देते हैं, जो सङ्गत नहीं होता है।[1]

'आत्मा' शब्द का प्रयोग वैदिक और आर्य साहित्य में परमात्मा, जीवात्मा दोनों के लिए पाया जाता है। इसके अनुसार प्रथम आत्मा से परमात्मा और दूसरे से जीवात्मा का ग्रहण ही उचित प्रतीत होता है। अन्यथा अपने को भली प्रकार दमन कर लेने पर पुरुष एक दुर्लभ मालिक को पाता है, इसकी कुछ ठीक सङ्गति ही नहीं बैठती। त्रिपिटकाचार्य महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के अनुवाद में 'नाथं लभति दुल्लभम्' का सीधा और ठीक अर्थ 'दुर्लभ मालिक को पाता है' ऐसा किया गया है।

बुद्धजी ने वेदज्ञ ब्राह्मणों की प्रशंसा भी की है—

यं ब्राह्मणं वेदगुं अभिञ्ञा,
अकिंचनं कामभवे असत्तम्।

---

१. पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड कृत "बौद्धमत और वैदिकधर्म, एक तुलनात्मक अनुशीलन" पृष्ठ १११-११२।

अद्धाहि सो ओघमिमम अतारि,
तिण्णो च पारम् अखिलो अकङ्खो ।।
[सुत्तनिपात, श्लोक १०५९]

अर्थ—जिसने उस वेदज्ञ ब्राह्मण को जान लिया, जिसके पास कुछ धन नहीं, और जो सांसारिक कामनाओं में आसक्त नहीं, वह आकांक्षा-रहित सचमुच इस संसार-सागर के पार पहुंच जाता है।[1]

अतः पुराणकार ने बौद्धालय में जाने पर शुद्धि नहीं है, ऐसा जो लिखा है, वह उचित प्रतीत नहीं होता है।

'नारद-पुराण' में वैदिक सिद्धान्त

१—'त्रिदेव' एक ही हैं—

(क) हरिशंकरयोर्मध्ये ब्रह्मणश्चापि यो नरः ।
भेदं करोति सोऽभ्येति नरकं भृशदारुणम् ।।४८।।
[नारद-पुराण, अध्याय ६]

अर्थ—ब्रह्मा, विष्णु, महेश में जो मनुष्य भेद करता है, वह दारुण नरक में पड़ता है।

(ख) ब्रह्माविष्णुशिवाद्यैस्तु भेदवानिव लक्ष्यते ।
गुणोपाधिकभेदेषु त्रिष्वेतेषु सनातनः ।।६४।।
संयोज्य मायामखिलं जगत्कार्यं करोति च ।।६५।।

अर्थ—वह ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीन रूपों से भेद वाले से लगते हैं, वास्तव में वह पुराण पुरुष ही गुणों का उपाधिरूप इन तीनों मूर्तियों में माया का संयोग रख कर जगत् का सम्पूर्ण कार्य करते हैं।

---

१. पं० धर्मदेवजी विद्यामार्त्तण्ड कृत "बौद्धमत और वैदिकधर्म, एक तुलनात्मक अनुशीलन" पृष्ठ १४९, १५०।

टिप्पणी—ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों एक ही हैं, पर पौराणिक तीनों को अलग-अलग मानते हैं।

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्स शिवस्सोऽक्षरस्स परमः स्वराट्।
स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमाः ॥७॥ [कैवल्योपनिषद्]

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।
[ऋ० १।१६४।४६]

इन प्रमाणों से 'एकेश्वरवाद' सिद्ध है। पुराण भी यही कहता है।

२—सन्ध्योपासन नहीं करने वाला पाखण्डी—

नोपास्ते यो द्विजः संध्यां धूर्तबुद्धिरनापदि।
पाषंडः स हि विज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥७॥
[नारद-पुराण, अध्याय २७]

अर्थ—बिना आपत्ति के धूर्तबुद्धिवश जो द्विज सन्ध्योपासन नहीं करता, उसको पाखण्डी और धर्मक्रिया का अनधिकारी समझें।

टिप्पणी—सन्ध्योपासन आर्यों का परम कर्त्तव्य है। इसलिए बिना आपत्ति के जो द्विज सन्ध्योपासन नहीं करता है, उसको पुराण-कार पाखण्डी बतलाता है।

३—अभिवादन प्रणाली 'नमस्ते'—

आज श्री दीनानाथ शास्त्री, श्री माधवाचार्य शास्त्री प्रभृति पौराणिक 'नमस्ते' का विरोध करते हैं। परलोकवासी श्री ज्वाला प्रसाद मिश्र, पं० कालूराम शास्त्री, पं० नन्दकिशोर शुक्ल ने भी इसका विरोध किया था, और अपने ग्रन्थों में इसका उल्लेख किया है। इन पौराणिकों के पुराणों में ही 'नमस्ते' का प्रयोग भरा पड़ा है। नारद-पुराण' में भी 'नमस्ते' का प्रयोग है—

(क) देवताओं द्वारा विष्णु भगवान् को 'नमस्ते'—

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते लोकपावन ।
नमस्ते लोकनाथाय नमस्ते लोकसाक्षिणे ॥५७॥

नमस्ते ध्यानगम्याय नमस्ते ध्यानहेतवे ।
नमस्ते ध्यानरूपाय नमस्ते ध्यानसाक्षिणे ॥५८॥

[नारद-पुराण, अध्याय ४]

(ख) देवताओं द्वारा पुनः विष्णु भगवान् को 'नमस्ते'—

नमस्ते योगिने तुभ्यं सांख्ययोगरताय च ॥८२॥

[नारद-पुराण, अध्याय ८]

(ग) अंशुमान् द्वारा कपिल मुनि को 'नमस्ते'—

नमो ब्रह्मन्मुने तुभ्यं नमस्ते ब्रह्ममूर्त्तये ॥१२७॥

[नारद-पुराण, अध्याय ८]

(घ) अदिति द्वारा भगवान् को 'नमस्ते'—

नमस्ते देवदेवेश सर्वव्यापि जनार्दन ॥१९॥
नमस्ते बहुरूपायारूपाय च महात्मने ॥२०॥
नमस्ते लोकनाथाय परमज्ञानरूपिणे ॥२१॥

[नारद-पुराण, अध्याय ११]

(ङ) कश्यप द्वारा वामन भगवान् को 'नमस्ते'—

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय नमो नमस्तेऽखिलपालकाय ।
नमो नमस्तेऽमरनायकाय नमोनमो दैत्यविनाशनाय ॥७२॥

[नारद-पुराण, अध्याय ११]

(च) कश्यप द्वारा कमलाकान्त भगवान् को 'नमस्ते'—

नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने ॥८०॥

[नारद-पुराण, अध्याय ११]

(छ) भगीरथ द्वारा शङ्कर को 'नमस्ते'—

नमस्ते सर्वभूताय घण्टाहस्ताय ते नमः ॥८४॥

...नमस्ते ध्यानसाक्षिणे ॥८७॥

नमस्ते ध्यानसंस्थाय ध्यानगम्याय ते नमः ॥८८॥

[नारद-पुराण, अध्याय १६

(ज) 'माधव' को नमस्ते—

नमस्ते माधवायेति हुत्वाष्टौ च घृताहुतीः ॥३१॥

[नारद-पुराण, अध्याय १७

(झ) मधुसूदन देवेश को 'नमस्ते'—

नमस्ते मधुहन्त्रे च जुहुयाच्छक्तितो घृतम् ॥५१॥

[नारद-पुराण, अध्याय १७

(ञ) वामन को 'नमस्ते'—

नमस्ते वामनायेति दूर्वाज्याष्टोत्तरं शतम् ॥५६॥

[नारद-पुराण, अध्याय १९

(ट) पद्मनाभ भगवान् को 'नमस्ते'—

नमस्ते पद्मनाभाय होमं कुर्यात्स्वशक्तितः ॥७५॥

[नारद-पुराण, अध्याय १७

(ठ) सुरराजराज को 'नमस्ते'—

नमो नमस्ते सुरराजराज नमोऽस्तु ते देव जगन्निवास ॥१०५

[नारद-पुराण, अध्याय १७

(ङ) **भगवान् को 'नमस्ते'—**

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ।।२२।।

[नारद-पुराण, अध्याय १७]

(ढ) **वासुदेव जनार्दन को 'नमस्ते'—**

नमस्ते ज्ञानरूपाय ज्ञानदाय नमोऽस्तु ते ।।८।।
नमस्ते सर्वरूपाय सर्वसिद्धिप्रदायिने ।।९।।

[नारद-पुराण, अध्याय २१]

शुभ सूचना

लेखक द्वारा १८ पुराणों की आलोचनाएं प्रकाशित करने की व्यवस्था की जा रही है। जिन पुराणों की आलोचनाओं की पाण्डु-लिपियां तैयार हो गई हैं, उनके नाम ये हैं—

(१) 'श्रीमद्भागवत महापुराण' का आलोचनात्मक अध्ययन—मुद्रित होने पर ६६० पृष्ठ के लगभग होगी। जिसमें ७८६ व्याकरण की अशुद्धियां प्रदर्शित की गई हैं।

(२) 'श्रीमद्देवीभागवत महापुराण' का आलोचनात्मक अध्ययन—मुद्रित होने पर २०५ पृष्ठ की होगी।

(३) 'श्रीमार्कण्डेय पुराण' का आलोचनात्मक अध्ययन—मुद्रित होते पर ७० पृष्ठ की होगी।

(४) 'श्रीविष्णु पुराण' का आलोचनात्मक अध्ययन—मुद्रित होने पर ११५ पृष्ठ की होगी। ब्रह्मचारी श्री जगदीशजी विद्यार्थी कृत 'विष्णु-पुराण की आलोचना' की प्रत्यालोचना पौराणिक पं० दीनानाथ शास्त्री ने की थी। उसका भी मुंहतोड़ व सप्रमाण उत्तर दिया गया है।

(५) 'वायु-पुराण' का आलोचनात्मक अध्ययन—मुद्रित होने पर १२० पृष्ठ की होगी।

(६) 'मत्स्य-पुराण' का आलोचनात्मक अध्ययन—मुद्रित होने पर ११० पृष्ठ की होगी।

(७) 'श्रीहरिवंश-पुराण' का आलोचनात्मक अध्ययन—लिखी जा रही है।

शेष पुराणों के मंगाने व उन पर अनुसन्धान कार्य किया जा रहा है।

पं० माधवाचार्य शास्त्री, पं० दीनानाथ शास्त्री, दिवंगत पं० कालूराम शास्त्री व पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र विद्यापरिधि, महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पं० बलदेव उपाध्याय एम० ए० साहित्याचार्य तथा पं० श्री कृष्णमणि त्रिपाठी व्याकरणाचार्य, एम० ए० द्वारा पुराणों की कथाओं को वेदों द्वारा सिद्ध करने के प्रयासों पर विचार किया गया है।

आवश्यक कार्य—इनके प्रकाशन में सहयोग देने के लिए उदार धनी व्यक्तियों को मुक्तहस्त से दान करना चाहिए। एक सहस्र रुपये दान दाता का चित्र व सूक्ष्म परिचय भी पुस्तक में दिया जायगा।

—लेखक

लेखक की प्रकाशित अन्य पुस्तकों की सूची

वैदिकधर्म-सम्बन्धी—

१—अथर्ववेद की प्राचीनता	०-३७
२—महर्षि दयानन्दजी कृत वेदभाष्यानुशीलन	१-००
३—आर्यसमाज के द्वितीय नियम की व्याख्या	०-५०
४—भारतीय इतिहास की रूपरेखा पर एक समीक्षात्मक दृष्टि	०-२५
५—भारतीय इतिहास और वेद	०-१६
६—ऋग्वेद के दशम मण्डल पर पाश्चात्य विद्वानों का कुठाराघात	०-३१

७—आर्यसमाज में मूर्तिपूजाध्वान्त निवारण ०-२५
८—वामनावतार की कल्पना ०-३७
९—उपनिषदों की उत्कृष्टता ०-१२
१०—महर्षि दयानन्दजी की दृष्टि में 'यज्ञ' ०-०६
११—पाश्चात्यों की दृष्टि में वेद ईश्वरीयज्ञान ०-३७
१२—सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास-भाष्य ०-५०
१३—सामवेद का स्वरूप ०-१२
१४—'वैदिक एज' पर एक समीक्षात्मक दृष्टि ०-७५
१५—भ्रम-निवारण (जैनमत का थोथा अहिंसावाद) ०-१२
१६—वैदिक-देवता-रहस्य ०-०६
१७—शिवलिङ्ग-पूजा-पर्य्यालोचन ०-२५
१८—अष्टादश-पुराण परिशीलन ०-७५
१९—क्या वेद में मृतक श्राद्ध है ? ०-०६
२०—इस्लाम के 'स्वर्ग-नरक' पर महर्षि दयानन्दजी की आलोचना का प्रभाव ०-५०
२१—महर्षि दयानन्द तथा आर्यसमाज को समझने में पौराणिकों का भ्रम ०-२५
२२—नीर-क्षीर-विवेक ३-००
२३—वैदिक-सिद्धान्त-मार्तण्ड ३-००
२४—वैदिककाल में तोप व बन्दूक (अप्राप्य) ०-०६
२५—वैदिक शासन पद्धति (अप्राप्य) ०-०६
२६—गायत्री-माहात्म्य (अप्राप्य) ०-१२
२७—पाश्चात्यों की दृष्टि में इस्लामीमत-प्रवर्त्तक ०-२५
२८—बाईबिल में वर्णित बर्बरता तथा अश्लीलता का दिग्दर्शन ०-३१

२९—आचार्य दयानन्द सरस्वती और मसीही मत पर्यालोचन (उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा जब्त)	०-१२
३०—'नारद-पुराण' का आलोचनात्मक अध्ययन	०-७५
३१—आर्यों का आदि जन्म-स्थान निर्णय	०-४०

वर्णव्यवस्था-सम्बन्धी—

३२—कुशवाहा क्षत्रियोत्पत्ति मीमांसा	१-५०
३३—राठौड़ कुलोत्पत्ति मीमांसा	१-२५

कथा-कहानी व उपन्यास—

३४—मेरी रोचक आठ कहानियां	०-७५
३५—लड़खड़ाते जीवन (शिक्षाप्रद उपन्यास)	०-५०

जादू-संवशीकरण-सम्मोहन-सम्बन्धी—

३६—जादूविद्या-रहस्य	२०-००
३७—अद्भुत वैज्ञानिक जादू-कौशल	५-२५
३८—मनोवैज्ञानिक-जादूविद्या के चमत्कार	५-००
३९—गणित के जादू	०-२५
४०—कुशवाहा का अद्भुत जादू-प्रतिष्ठान	२-००

प्राप्ति-स्थान का पता—

१—**जयदेव ब्रदर्स**, (पुस्तक प्रकाशक व विक्रेता).
आत्माराम पथ, **बड़ौदा** (गुजरात)

२—**डा० शिवपूजनसिंह कुशवाहा**, एम० ए०, साहित्यालङ्कार,
द्वारा—टेफको, १३।४०० सिविल लाइन्स,
हजारी बंगला, **कानपुर** (उत्तर प्रदेश)

पृ० १—४८ तक रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस, बहालगढ़ (सोनीपत) में छपा।

गुरु विरजानन्द दण्डी
मन्दिर पुस्तकालय
परिग्रहण क्रमांक 2883

उच्चतम वैदिक साहित्य

धर्मवीर पं० लेखराम	०.६०
वैदिक सिद्धान्त	०.५०
हम क्या खाएं	०.४०
गृहस्थ धर्म	०.२५
वेद प्रवचन	५.००
धर्म का आदिस्रोत	१.००
दयानन्द वाणी	१.५०
व्यायाम सन्देश	१.००
राष्ट्रनिर्माता दयानन्द	०.७५
मां गायत्री	०.७५
संध्या हवन सत्संगपद्धति	२.००
हिन्दी-इंग्लिश आर्य विवाह पद्धति	०.५०
कर्तव्य दर्पण	०.६०
ब्रह्मचर्य ही जीवन है	२.००
ब्रह्मसूत्र विद्योदय भाष्यम्	२०.००
चारों वेद मूल	६५.००
ऋग्वेद भाषा भाष्य	२.५०
सांख्यदर्शनम्	८.००
सत्यार्थप्रकाश हिन्दी	६.००
,, मराठी	४.५०
ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य को देन	६.००
सांख्य-सिद्धान्त	१६.००
संस्कार विधि (उत्तम शुद्ध संस्करण)	१.७५
सन्ध्या-सुधा अर्थात् ब्रह्मयज्ञ या परमदेव परमात्मा के पूजन की वैदिक विधि	०.७५
निरुक्त-सम्मर्श:	१५.००
वेदाध्ययन प्रवेशिका	५.००
यजुर्वेदान्वयार्थ	१.५०

ENGLISH BOOKS

Life of Swami Dayananda Saraswati	Rs. 25/-
Hymns of Samveda	Rs.15/-
English Satyarth Prakash i.e. Light of Truth	Rs. 15/-, 10/-
Buddha An Arya Reformer	Rs. 1/-75
Land Marks of Swami Dayanand's Teachings	1/00
Vedic Culture	Rs 5/-
Fountain Head of Religion	Rs. 4/-

(डाकव्यय पृथक्)

पुस्तक-प्राप्ति स्थान—

जयदेव ब्रदर्स, बडोदा

आत्माराम मार्ग, बडोदा-१

Book-Seller Baroda. Regd. No. G-347

॥ ओ३म् ॥

अन्ताराष्ट्रीय हिन्दी अंग्रेजी मासिकपत्र

साहित्यप्रचारक * पुस्तक विक्रेता

वर्ष २१ सं० २-३ पूर्ण संख्या २४२-४३ जुलाई-अगस्त
Vol. XXI Nos. 2-3 Whole Nos. 242-43 July-August 1971

BOOK-SELLER BARODA

Anglo-Hindi International Monthly

Sub: Rs. 2/- Foreign 6 Shillings

विशेषताएं

* पुस्तकालयों को केवल साठ पैसे में दिया जाता है।
* पुस्तक प्रवृत्ति का सर्वप्रथम अपने ढंग का अकेला मासिक प्रति मास नवीन कविताओं लेखों से युक्त छपता है।
* विज्ञापन छपाई प्रतिपृष्ठ प्रतिमास २५ रुपये, आधा पृष्ठ १५ रुपये, चौथाई पृष्ठ १० रुपये किसी भी रूप में स्वीकार किये जाते हैं।

पुस्तकें लेकर भी विज्ञापन छापते हैं।

प्रकाशक, मुद्रक श्री विनोद शान्तिप्रिय जी मुद्रणालय बडोदा
प्रकाशन स्थल—जयदेव ब्रदर्स, आत्माराम मार्ग बडोदा-१